कूर्म पुराण[1] में शिवतत्त्व

नारदीय पुराण के पूर्वभाग(अध्याय 106) में कूर्म पुराण का जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार(क) कूर्म पुराण के पूर्व तथा उपरि-ये दो विभाग हैं।(ख) मूल कूर्म पुराण-ब्राह्मी, भागवती, सौरी एवं वैष्णवी-इन चार संहिताओं में विभक्त था। इसी बात को कूर्म पुराण ने भी स्वीकार किया है। परन्तु वर्तमान समय में केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है। यही कूर्म पुराण(ब्राह्मी संहिता) पूर्व तथा उपरि-दो भागों में विभक्त है। मत्स्य पुराण(53/22) तथा भागवत (10/13/8) के अनुसार मूल कूर्म पुराण में क्रमशा: 18 एवं 17 हजार श्लोक होने चाहिये जबकि वर्तमान में मात्र छ: हजार श्लोक उपलब्ध हैं। इसमें लक्ष्मी कल्प का वृत्तान्त है। यह एक शैवपुराण है। अर्थात् इस पुराण के प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। भगवान् विष्णु ने कूर्म-अवतार धारणकर विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्न को जो भक्ति, ज्ञान एवं मोक्ष का उपदेश दिया था, उसी उपदेश को पुन: भगवान् कूर्म ने समुद्रमन्थन के समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषियों के समक्ष दुहराया, वही कथा कूर्म पुराण के नाम से विख्यात है।

भगवान् शिव का स्वरूप

इस पुराण में कूर्म रूपधारी विष्णु भगवान् ने शिव को ही परम तत्त्व तथा मुख्य देवता प्रतिपादित किया है। शिवतत्त्व को परब्रह्म के रूप में वर्णितकर उनके माहात्म्य को भी इस पुराण में विस्तार से बताया गया है।

मुनियों द्वारा सृष्टि का नियामक कौन है? यह पूछे जानेपर कूर्म भगवान् कहते हैं कि "सर्वत्र(चारों ओर) मुखवाले महेश्वर(प्रकृति से)पर, अव्यक्त, चतुर्व्यूह[2], सनातन, अनन्त, अप्रमेय तथा(समस्त जगत् के) नियन्ता हैं। तत्त्वचिन्तक जिसे प्रधान और प्रकृति कहते हैं और जो सत्-असत्रूप हैं, वही अव्यक्त नित्य कारण है।"

महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्व्यूहः सनातनः।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता विश्वतोमुखः।।
अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः।। (कू. पु. पू. वि. 4/5-6)

भगवान् शिव एक ही हैं पर समस्त सृष्टि उन्हीं का रूप या अभिव्यक्ति होने के कारण वे अनेक रूप धारण करनेवाले कहलाते हैं। सृष्टिरूप व्यापार को चलाने के लिये वे ही तीनों गुणों(रज, सत् एवं तम) को धारणकर तीन प्रमुख देवों या अनेक देवों के रूप में विभक्त हो जाते हैं। ऋषियों के पूछने पर भगवान् कूर्म बतलाते हैं कि "एक होनेपर भी वे निर्गुण- निरंजन महादेव सृष्टि, पालन

---

1. प्रस्तुत निबंध गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा 1977 में प्रकाशित कल्याण के, 'कूर्मपुराणांक' पर आधारित है।
2. चतुर्व्यूह का अर्थ चार शक्तियों(शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा तथा निवृत्ति) वाला।

और संहाररूपी तीन गुणों के कारण तीन रूपों(ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र) में स्थित हैं। वे कभी एक, कभी दो, कभी तीन तथा कभी अनन्त रूप धारण कर लेते हैं। वे योगेश्वर अपनी लीला से अनेक आकार, क्रिया, रूप तथा नामवाले शरीरों का निर्माण करते हैं और फिर संहार कर डालते हैं।"

एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा पुनः।।
योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया।। (कू. पु. पू. वि. 4/53-54)

भक्तों के कल्याण के लिये ही वे संहार करते हैं। अपने को तीन रूपों में विभक्तकर तीनों कालों में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार वे विशेष रूप से सृष्टि, संहार और पालन का कार्य करते हैं। चूँकि वे स्वयं ही प्रजा की सृष्टि, पालन एवं पुनः संहार करते हैं, इसलिये तीनों काल में त्रिगुणात्मक होने से वे परमात्मा एक(अद्वैत) कहलाते हैं। आदि में उत्पन्न होने से वे आदिदेव तथा अजन्मा होने से अज कहलाते हैं। वे समस्त प्रजाओं का पालन करते हैं, इसलिये 'प्रजापति' इस नाम से जाने जाते हैं और देवताओं में सबसे बड़े देव हैं, इसलिये वे 'महादेव' कहलाते हैं।(कू. पु. पू. वि. 4/56-58)

बृहत् होने से ब्रह्मा तथा परम(श्रेष्ठ) होने के कारण परमेश्वर कहे जाते हैं। सबको अपने वश में रखनेवाले परंतु स्वयं किसी के वश में न रहने के कारण वे ईश्वर(रूप में) परिभाषित किये जाते हैं। उनकी सर्वत्र गति होने के कारण वे ऋषि और प्रलयकाल में सब कुछ हरण करने के कारण हरि कहलाते हैं। किसी के द्वारा उत्पन्न न होने तथा सर्वप्रथम होने के कारण 'स्वयम्भू'(इस नाम से) पुकारे जाते हैं। सभी मनुष्यों के वे अयन(आश्रय-स्थल) हैं, इसलिये नारायण कहे जाते हैं। संसार का संहार करने से हर तथा सर्वत्र व्यापक होने से विष्णु कहलाते हैं।(कू. पु. पू. वि. 4/59-61)

वे सब कुछ जानने के कारण भगवान् तथा रक्षाकार्य करने से ॐकार कहलाते हैं। सभी का विशिष्ट ज्ञान होने से सर्वज्ञ तथा सभी के आत्मस्वरूप होने के कारण वे सर्व कहे जाते हैं। वे मलशून्य हैं, इसलिये शिव और सर्वत्र व्याप्त होने से विभु तथा सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करने से तारक कहलाते हैं(कू. पु. पू. वि. 4/62-63)। इस प्रकार भगवान् शिव के विभिन्न नामों के पीछे उनकी विविध विशेषतायें या गुण ही कारण हैं।

प्राकृत प्रलय एवं काल के सन्दर्भ में चर्चा करते हुए बताया गया है कि प्राकृत प्रलय में ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों का प्रकृति में लय हो जाता है। पुनः कालयोग से उनका आविर्भाव होता है। ब्रह्मा, जीव, वासुदेव तथा शंकर की काल के द्वारा सर्जना होती है, पुनः वही काल इनका संहार भी करता है। यह काल भगवान् है, अनन्त है, अजर, अमर और अनादि है। सर्वव्यापी, स्वतंत्र तथा सबका आत्मस्वरूप होने से यही महेश्वर कहलाता है।(कू. पु. पू. वि. 5/19-20)

ब्रह्मा, रुद्र तथा नारायण आदि बहुत से होते हैं पर भगवान् एक ही है जो ईश तथा काल आदि कहलाता है।

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादयः।
एको हि भगवानीशः कालः कविरिति श्रुतिः।। (कू. पु. पू. वि. 5/21)

लोकसृष्टि के कार्य में सफलता(विस्तार) न मिलनेपर ब्रह्माजी ने घोर तप किया। परन्तु उससे भी उन्हें जब कुछ हासिल न हुआ तो उन्होंने दुःख एवं क्रोध से भरकर अश्रुपात किया। फलस्वरूप उनके लालट से परमेश्वर महादेव प्रकट हुए। वे ही तेज की राशि सनातन भगवान् ईश हैं। जिन्हें विद्वान् लोग अपनी आत्मा में स्थित परमेश्वर के रूप में देखते हैं।(कू. पु. पू. वि. 7/24-26)

ऋषियों ने जब यह शंका प्रकट की कि रुद्रदेव किस प्रकार ब्रह्माजी के पुत्र बने जबकि वे (रुद्रदेव) स्वयं ब्रह्मादि देवों के स्रष्टा हैं? तो उत्तर में सूतजी बताते हैं कि एक बार ब्रह्मा एवं विष्णु में अपनी-अपनी श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ गया[1]। अन्त में ब्रह्मा ने विष्णु के महत्त्व को स्वीकार कर तीसरे के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया। तब भगवान् विष्णु ने भगवान् शिव की महत्ता की ओर संकेत करते हुए ब्रह्मा को उनकी शरण लेने का सुझाव दिया। इसपर ब्रह्मा क्रुद्ध हो गये तथा विष्णु की बात को मानने से इन्कार कर दिया। तदनन्तर ब्रह्मा के ऊपर अनुग्रह करने के लिये ईश्वर हर वहाँ प्रकट हो गये। उनके तीन नेत्र, जटा तथा त्रिशूल थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा, ग्रहों तथा नक्षत्रों से गुथी हुई अद्भुत माला धारण कर रखी थी। ब्रह्मा माया से मोहित होने के कारण उस अद्भुत आकृति को न पहचान सकने के कारण उसका परिचय भगवान् विष्णु से पूछा। उत्तर में भगवान् विष्णु कहते हैं- "ये देव स्वयं प्रकाशित होनेवाले, सनातन, आदि और अन्त से रहित, अचिन्त्य, महान्, समस्त लोकों के ईश्वर महादेव हैं। ये शंकर, शम्भु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, समस्त प्राणियों के एकमात्र स्वामी, योगी, महेश, विमल एवं शिवरूप हैं। ये ही धाता, विधाता, प्रधान, पुरुष और ईश्वर हैं। यतिजन(संन्यासी लोग) ब्रह्म की भावना से भावित होकर जिनका दर्शन करते हैं वे ही केवल, निष्कल, महादेव शिव काल बनकर सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, रक्षा और संहार करते हैं।"

अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्।।
शंकरः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः।।
एष धाता विधाता च प्रधानपुरुषेश्वरः।
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः।।

1. इस पुराण की कथा शिव तथा अन्य पुराणों में वर्णित कथा से भिन्न है। अन्य कथाओं में दोनों देवों के बीच में अग्निकार लिंग या स्तंभ प्रकट हुआ तदनन्तर भगवान् शिव प्रकट हुए।

सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः।। (कू. पु पू. वि. 9/57-60)

विष्णु से इस प्रकार शिव संबंधी ज्ञान प्राप्तकर ब्रह्माजी ने अथर्ववेद के मन्त्रों से उन देवेश्वर शिव की स्तुति कर उनकी शरण ली। तब भगवान् शिव प्रसन्न होकर ब्रह्मा को वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। वर में ब्रह्माजी ने उनसे उन्हीं के समान पुत्र अथवा उन्हीं को अपने पुत्ररूप में प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। भगवान् शिव ने उन्हें वरदान दे दिया और उसी वर के फलस्वरूप वे रुद्ररूप में ब्रह्मा के ललाट से प्रकट हुए।

भगवान् शंकर में दस अव्यय(शाश्वत) गुण-ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व-सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। पिनाक धारण करनेवाले शंकर ही साक्षात् परमेश्वर हैं।

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः।
स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च।।
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे।
स एव शंकरः साक्षात् पिनाकी परमेश्वरः।। (कू. पु. पू. वि. 10/39-40)

ब्रह्माजी ने अपने ललाट से उत्पन्न भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें परमेश्वर, ब्रह्म, शान्ति के मूल हेतु, शूल एवं पिनाक धारण करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले, त्रिमूर्तिस्वरूप, ब्रह्मा के उत्पत्तिकर्त्ता, ब्रह्मविद्या के अधिपति, वेदों के रहस्यरूप, काल के भी काल, योगियों के गुरु, दिगम्बर, मुण्ड(माला) एवं दण्ड धारण करनेवाले, अनादि, मलरहित, ज्ञानगम्य, तारक, तीर्थरूप, धर्माचरण द्वारा प्राप्य, निष्प्रपंच, निराभास, जगन्मय, जगत्स्रष्टा, पालनकर्त्ता तथा संहारकर्त्ता, ईश्वर, परब्रह्म, निष्कल, अक्षर, परम ज्योति, काल, प्रधान पुरुष, प्रकृति, अनन्त, पंचमहाभूत एवं अहंकाररूप, अग्निस्वरूप, नित्यानन्दस्वरूप एवं निराधार आदि संज्ञाओं एवं विशेषणों से विभूषित किया है।(कू. पु. पू. वि. 10/43-70)

ब्रह्माजी की स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्।
त्वया संह्रियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मयः।।
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः।
परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः।।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः।
त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा।। (कू. पु. पू. वि. 10/53-55)

अर्थात्-जगन्मय! आपके द्वारा ही यह सम्पूर्ण (जगत्) रचा गया है, आप में ही यह सम्पूर्ण प्रतिष्ठित है और आप ही प्रधानादि समस्त विश्व का संहार करते हैं। आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म,

महेश्वर, परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल,तथा हर हैं। आप अक्षर, परम ज्योति हैं, आप काल तथा परमेश्वर हैं और आप ही प्रधान पुरुष, प्रकृति तथा अनन्त हैं। (कू. पु. पू. वि. 10/53-55)

इस स्तुति के उपरान्त ब्रह्माजी से भगवान् शिव ने कहा कि "जो आपने 'मेरा पुत्र बनें' इस प्रकार से मुझसे प्रार्थना की थी मैंने उसे(रुद्ररूप में उत्पन्न होकर) पूर्ण कर दिया। (अब आप)विविध प्रकार के जगत् की सृष्टि करें।" आगे भगवान् शिव अपने स्वरूपपर प्रकाश डालते हुए ब्रह्माजी से कहते हैं- "मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय इन तीनों गुणों से भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-इन नामों से तीन रूपों में विभक्त हूँ। आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं और सृष्टि की रचना के लिये मेरे ही दाहिने अंग से आप बनाये गये हैं। मेरे ही बायें अंग से पुरुषोत्तम विष्णु उत्पन्न हैं। उन्हीं देवों में आदिदेव शंभु के हृदयप्रदेश से मैं ही रुद्र-रूप में प्रादुर्भूत हूँ और उन्हीं की अपर(दूसरी) मूर्ति हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव(क्रमशः) सृष्टि, स्थिति तथा संहार के हेतु हैं। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छा से अपने को(तीन रूपों में) विभक्तकर स्थित रहते हैं। इसी प्रकार अन्य भी जो रूप हैं, वे सब मेरी माया द्वारा ही निर्मित हैं। स्वरूपतः महादेव स्वच्छ, रूपरहित एवं अद्वितीय हैं। वे देव इन त्रिमूर्तियों(ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं। तीन नेत्रोंवाली वह माहेश्वरी मूर्ति योगियों को सदा शान्ति प्रदान करनेवाली है। पितामह! मुझे सनातन ऐश्वर्य, विज्ञान, तेज एवं योग से समन्वित उनकी वही परा मूर्ति समझो। वही मैं कालरूप होकर तमोगुण का आश्रय लेकर समस्त विश्व को ग्रस्त कर लेता हूँ , कोई दूसरा तम द्वारा मुझे अभिभूत नहीं कर सकता।"

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहरारव्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।।
स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः।
ममैव दक्षिणादङ्गाद् वामाङ्गात् पुरुषोत्तमः।।
तस्य देवादिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः।
सम्बभूवाथ रुद्रोऽसावहं तस्यापरा तनुः।।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः।।
तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि तु।
निरूपः केवलः स्वच्छो महादेवः स्वभावतः।।
एभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः।
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा।।
तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह।
शाश्वतैश्वर्यविज्ञानतेजोयोगसमन्विताम्।।
सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्।

कालो भूत्वा न तमसा मामन्योऽभिभविष्यति।। (कूर्म पु. पूर्व वि. 10/75-82)

सम्पूर्ण जगत् को ईश या शिव की संतान और उनकी शक्ति को माया कहा गया है। मायावी पुरुषोत्तम ईश उस(माया)– के द्वारा ही इस(जगत्) को भ्रमित(मोहित) करते हैं। वही यह सर्वकारा, सनातनी मायात्मिका शक्ति महेश के विश्वरूपत्व को सदा प्रकाशित करती रहती है। शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियाँ तथा शक्तिमान्(इसी) 'शक्ति' से उत्पन्न हैं। शक्ति एवं शक्तिमान् में भेद किया जा सकता है, किन्तु तत्त्व का चिन्तन करनेवाले योगीजन(उनमें) परमार्थतः अभेद का ही दर्शन करते हैं। जितनी भी शक्तियाँ हैं वे गिरिजादेवी और जितने भी शक्तिमान् हैं वे शंकर हैं। ब्रह्मवादियों के द्वारा पुराण में इनके विषय में विशेष(रूप से) कहा जाता है। अर्थात् शिव-शक्ति में अभेद है तथा सम्पूर्ण जगत् शिव-शक्ति का रूप है।

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः।।
शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः।
अभेदं चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः।।
शक्तयो गिरिजादेवी शक्तिमन्तोऽथ शंकरः।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः।। (कू. पु. पू. वि. 11/42-44)

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव कहते हैं कि मैं अपने को नारायण तथा सनातन जगन्माता गौरी आदि अनेक रूपों में विभक्तकर स्थित रहनेवाला देव ईश्वर हूँ। मेरे परम तत्त्व को न तो देवता आदि जानते हैं और न महर्षि। मैं ही निष्क्रिय, शान्त, अद्वितीय और परिग्रहशून्य हूँ। मुझे ही केशव, देव तथा अम्बिका देवी कहा जाता है। माहेश्वरी गौरी मेरी निरञ्जनशक्ति हैं। इन्हीं देवी के साथ अद्वितीय निष्कल तथा परमस्वरूप मैं इस सम्पूर्ण(विश्व) का साक्षात्कार करता हूँ।(कू. पु. पू. वि. अ. 15/152-154, 158, 160)

पुनः कहा गया है कि ये देव(महेश्वर) ही सभी प्राणियों में गूढ़रूप से प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् सूक्ष्मरूप से व्याप्त हैं। वे मायी(माया के नियन्ता) रुद्र सकल(साकार) एवं निष्कल(निराकार) हैं। वे ही देवी(रूप) हैं, उनसे भिन्न(जगत् में और कुछ भी) नहीं है, ऐसा जानकर अमृतत्त्व की प्राप्ति होती है।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढो मायी रुद्रः सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्नमेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति।।

(कू. पु. उ. वि. 37/161)

अन्धकासुर के वध से पहले भगवान् शिव की स्तुति में अन्तरिक्षचारी लोगों ने भगवान् शिव को अनन्त, महादेव, सनातन, कालमूर्ति, अग्निरूप, सभी प्राणियों में सदैव निवास करनेवाले, यज्ञ और

वषट्काररूप, धाता, अव्यय, हरि, ब्रह्मा, परमपद, प्रणवमूर्ति, योगात्मा, वेदत्रयीरूप, त्रिलोचन, देवताओं और सम्पूर्ण जगत् का स्वामी कहा है।(कू. पु. पू. वि. 15/181-183)

अन्धकासुर ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें पुरातन, पुण्यदायी, अनन्तस्वरूप, कालरूप, कवि, संयोग एवं वियोग के कारणरूप ईश्वरतत्त्व, हजारों पैर, आँख तथा सिरों से युक्त, अद्वितीय, विभाग-रहित, शुद्ध तत्त्वस्वरूप, सर्वात्मा, पुराणपुरुष, परमात्म-तत्त्व, आनंदस्वरूप, परम पवित्र ओंकार शब्द से वाच्य, अविनाशी, परब्रह्म, वेदवाक्यों द्वारा 'ईश्वर'-शब्द से सिद्ध, इन्द्र, वरुण, अग्नि, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त, यज्ञ, संसार के आदि, नारायण, तमोगुण से परे, परम परमात्मा, पंचपदान्तरस्वरूप, ब्राह्मी, वैष्णवी तथा शाक्त-इन तीनों शक्तियों से अतीत, निरंजन, त्रिमूर्तिरूप(ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप), अनन्त पदात्मक, आत्ममूर्ति, जगन्निवास, ललाट में नेत्र धारण करनेवाले, नागराजों की माला धारण करनेवाले, तीनों काल के प्रभाव से रहित तथा अम्बिकापति कहा है।(कू. पु. पू. वि. 15/188-200)

भगवान् शिव 'ईश्वर गीता' में कहते हैं कि अव्यक्त(तत्त्व) से काल, प्रधान तथा परम पुरुष पैदा हुए। उन(कालादि) से यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, इसलिये यह जगत् ब्रह्ममय है। जिसके हाथ और पैर का प्रसार सर्वत्र है, जिसके नेत्र, मस्तक, मुख एवं कर्ण सर्वत्र वर्तमान हैं एवं जो समस्त(विश्व) को आवृतकर स्थित है वही ब्रह्म है। वह सभी का आधार, सदा आनंदस्वरूप, अव्यक्त और द्वैत से रहित(अद्वैत तत्त्व) है। वह सभी उपमानों से रहित (निरुपमेय), इन्द्रियों द्वारा प्रमाणों से ज्ञात न होने योग्य, निर्विकल्प, निराभास, सभी का आश्रय, परम अमृतस्वरूप, अभिन्न, भिन्नरूप से स्थित(प्रतीत), शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, निर्गुण और परम व्योमरूप है। वह सभी प्राणियों का आत्मा है, वह बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला परम तत्त्व है। मैं वही सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानात्मा परमेश्वर हूँ। मुझ अव्यक्त स्वरूपवाले के द्वारा ही इस विश्व का विस्तार हुआ है। सभी प्राणी मुझमें ही अवस्थित हैं।(कू. पु. उ. वि. 3/1-7)

वे कहते हैं कि प्रधान और पुरुष-ये ही दो तत्त्व कहे गये हैं। काल को ही उन दोनों का परम संयोजक कहा गया है।(प्रधान, पुरुष और काल) ये तीनों तत्त्व अनादि तथा अन्तरहित अव्यक्त(परम तत्त्व) में स्थित हैं। वह(परम तत्त्व) तदात्मक(प्रधान आदि का प्रेरक होते हुए भी) तद्भिन्न(उनसे सर्वथा असंस्पृष्ठ) है, वह(परमतत्त्व) मेरा ही रूप है।(कू. पु. उ. वि. 3/8-9)

भगवान् शिव आगे कहते हैं कि सनातन काल अन्तःप्रविष्ट होकर इस सम्पूर्ण (विश्व) का नियमन करता है। इस काल को भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ तथा पुरुषोत्तम कहा जाता है। मनीषियों ने मन को सभी इन्द्रियों से उत्कृष्ट एवं मन से उत्कृष्ट अहंकार को, अहंकार से उत्कृष्ट महान् को(महत्तत्त्व) बतलाया है। महत् से उत्कृष्ट अव्यक्त, अव्यक्त से उत्कृष्ट पुरुष तथा पुरुष से उत्कृष्ट भगवान् प्राण हैं। यह संम्पूर्ण संसार उसी से है। प्राण से परतर व्योम है और व्योम से अतीत अग्नि ईश्वर है। मैं वही

सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हूँ। मुझसे उत्कृष्ट और कोई तत्त्व नहीं है। मुझे जान लेने से मुक्ति हो जाती है।(कू. पु. उ. वि. 3/17-20)

प्राणात् परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते।। (कू. पु. उ. वि. 3/20)

भगवान् शिव कहते हैं कि महेश्वर को छोड़कर इस संसार में सब कुछ अनित्य है। वही मैं मायावी तथा मायामय देव काल के संसर्ग से सम्पूर्ण(संसार) की सदा सृष्टि करता हूँ और(फिर) संहार करता हूँ। मेरे सांनिध्य में ही यह काल(तत्त्व) सम्पूर्ण जगत् की(सृष्टि) करता है। अर्थात् मैं ही उस काल को इस कार्य में नियोजित करता हूँ।

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्।।
सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्।
मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः।।
मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत्। (कू. पु. उ. वि. 3/21-23)

इस पुराण के उत्तर विभाग के पाँचवे अध्याय में मुनियों ने भगवान् शिव की बीस श्लोकों(22-41) में स्तुति करते हुए उपरोक्त उद्धरणों में आये हुए विशेषणों का प्रयोग किया है। अतः उन विशेषणों की यहाँ पुनरावृत्ति अनावश्यक है।

मूल प्रकृति, प्रधान, पुरुष, महत्, अहंकार आदि विकारयुक्त तत्त्व-ये सब देवाधिदेव सनातन(शिव) के ही रूप हैं। यही सनातन पुरुष बन्धन है, यही बन्धन में डालनेवाला है। यही पाश और यही पशु है। यही सब कुछ जानता है, परंतु इसे जाननेवाला कोई नहीं है। इसे ही आदि पुराण-पुरुष कहा जाता है।[1](कू. पु. उ. वि. 7/32)

भगवान् शिव मुनियों से कहते हैं कि- "मैं ही सभी विद्याओं का स्वामी, प्राणियों का परम ईश्वर, ओंकारमूर्ति प्रजापति भगवान् ब्रह्मा हूँ।"

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः।। (कू. पु. उ. वि. 8/9)

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि ज्ञान, स्वंतत्रता, नित्य अलुप्तशक्ति तथा अनन्तशक्ति-ये विभु महेश्वर के छः अंग कहे गये हैं।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य।।(कू. पु. उ. वि. 8/13)

1. यहाँ बन्धन आदि को सनातनपुरुष में कल्पित मात्र बताकर अद्वैतभाव की प्रतिष्ठा की गयी है।

रुद्र की तीन मूर्तियाँ हैं, इन्होंने ही इस विश्व को व्याप्त कर रखा है। तमोगुण के अधिष्ठाता को अग्नि(काल या रुद्र), रजोगुण के अधिष्ठाता को ब्रह्मा तथा सत्त्व गुण के अधिष्ठाता को विष्णु कहा गया है। इनकी एक दूसरी मूर्ति है जो दिगम्बरा, शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसी में योग से युक्त परम ब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं।

रुद्रस्य मूर्त्तयस्तिस्रो याभिर्विश्वमिदं ततम्।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति प्रभुः।।
मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा वै शिवा ध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद् ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्।। (कू. पु. उ. वि. 37/70-71)

भगवान् शिव की ब्रह्मस्वरूपता का वर्णन अनेक स्थानों (जैसे कू. पु. उ. वि. 29/23-24, 37-39; उ. वि. 31/51- 58; उ. वि. 34/62-73 तथा उ. वि. 35/29-32 इत्यादि) पर मिलता है। उनके सगुण स्वरूप का वर्णन करते हुए उन्हें भस्म से सुशोभित, अर्धनारी-नररूपवाले, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रमा को सिर पर धारण करनेवाले, जटा-जूटधारी, व्याघ्रचर्म एवं त्रिशूलधारी, सर्पराज का कंकण पहननेवाले, मुण्डमालाधारी तथा पिनाकधारी आदि कहा गया है। उनके सगुण रूप का वर्णन करनेवाले कुछ संदर्भ इस प्रकार हैं-कू. पु. उ. वि. 31/32-34, उ. वि. 44/41-42 तथा उ. वि. 35/32 इत्यादि। कूर्म पुराण के उपरिभाग के प्रारंभ में ग्यारह अध्यायोंवाली "ईश्वर गीता" है जो ऋषियों के प्रति भगवान् शिव द्वारा कही गयी है। इसमें भगवान् शिव के तत्त्व का विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। उस गीता में वर्णित शिव संबंधी विचारों के लिये इस पुस्तक के "शिवप्रोक्त गीताओं में शिवतत्त्व" नामक शीर्षकवाले लेख को पढ़ें।

शिवोपासना

भगवान् शिव की उपासना भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली है। अनेक लोगों ने उनकी उपासना से अपना-अपना मनोरथ सिद्ध किया है। उदाहरण के लिये बाणासुर को गणपति का पद प्राप्त होना (कू. पु. पू. वि. अध्याय 17), अरुण एवं गरुड़ को क्रमशः सूर्य का सारथी तथा विष्णु का वाहन बनना(कू. पु. पू. वि. अध्याय 17), पराशर को व्यास का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. पू. वि. अ. 18), जनक द्वारा शिवधनुष प्राप्त किया जाना(कू. पु. पू. वि. अ. 20), भगवान् कृष्ण को पुत्र के साथ अन्यान्य वरदानों की प्राप्ति(कू. पु. पू. वि. अ. 24), वसिष्ठ, सावर्णि और याज्ञवल्क्य को योग की प्राप्ति(कू. पु. पू. वि. अ. 24), व्यास को ज्ञान प्राप्ति, भृगु को शुक्र का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. पू. वि. अ. 24), राजा श्वेत को गणपति का पद मिलना(कू. पु. उ. वि. अ. 35), नन्दी का शिवतुल्य हो जाना तथा गणपति बनना तथा शिलाद को नन्दी का पुत्ररूप में प्राप्त होना(कू. पु. उ. वि. अ. 41) तथा भगवान् विष्णु को चक्र की प्राप्ति(कू. पु. उ. वि. अ. 42) इत्यादि भगवान् शिव की उपासना से ही संभव हुआ।

ब्रह्माजी द्वारा कहा गया है कि जो उस अद्वितीय सनातन रुद्र की अपनी आत्मा में श्रद्धायुक्त मन से आराधना करता है, वह परमपद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

तमर्चयति यो रुद्रं स्वात्मन्येकं सनातनम्।
चेतसा भावयुक्तेन स याति परमं पदम्।। (कू. पु. पू. वि. 14/83)

(1) शिवभक्ति की श्रेष्ठता

जिस प्रकार भगवान् शिव को श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार उनकी भक्ति को भी श्रेष्ठ माना गया है। भगवान् शिव स्वयं अपने मुख से कहते हैं कि "मुझमें बुद्धि लगानेवाले जो मनुष्य सतत मेरी पूजा करते हैं, उन नित्य योगयुक्त पुरुषों के योग-क्षेम का मैं निर्वाह करता हूँ। जो दूसरे देवों के भक्त हैं, वे यदि मेरी भावना से युक्त होकर(दूसरे) देवताओं की पूजा करते हैं अर्थात् दूसरे देवों में मेरी ही भावना करते हैं तो वे भी (मुझमें) भावना करने के कारण मुक्त हो जाते हैं। अतएव समस्त अनीश्वर[1] देवताओं का परित्यागकर जो मुझ ईश का ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है।"

मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
ये चान्यदेवताभक्ताः पूजयन्तीह देवताः।
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि भावतः।।
तस्मादनीश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषतः।
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम्।। (कू. पु. उ. वि. 11/88, 90-91)

भगवान् शिव पुनः कहते हैं कि "जो सम्पूर्ण भोगों का परित्यागकर सर्वदा लिंग का पूजन करते रहते हैं, उन्हें मैं एक जन्म में ही परमेश्वर-पद(मोक्ष) प्रदान कर देता हूँ।"

येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषतः।
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमैश्वरम्।। (कू. पु. उ. वि. 11/93)

व्यासजी अर्जुन से चारों युगों के धर्मों का उपदेश करते समय कहते हैं कि "कृतयुग(सत्ययुग) में ब्रह्मा(प्रमुख) देवता होते हैं, इसी प्रकार त्रेता में भगवान् सूर्य, द्वापर में(प्रमुख) देवता विष्णु और कलियुग में महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य-ये सभी कलियुग में पूजित होते हैं, किन्तु पिनाकधारी भगवान् रुद्र चारों युगों में पूजे जाते हैं।"

ब्रह्माकृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।

1. कोई देवता पूजक की दृष्टि में अनीश्वर तबतक रहता है जबतक वह उसे शिव की विभूति नहीं समझता तथा उसे मात्र तुच्छ फल देनेवाला समझता है। परन्तु वह किसी भी देवता को शिव का ही रूप मानकर निष्काम भाव से पूजता है तो वह देवता अनीश्वर नहीं कहलाता। दूसरे शब्दों में अगर किसी देवता को तुच्छ फलका अधिष्ठाता मात्र माना जाय तो वह अनीश्वर है, परन्तु यदि उसमें परमेश्वर की भावना रखकर निष्कामभाव से पूजें तो वह अनीश्वर नहीं कहलायगा।

द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ रुद्रो महेश्वरः।।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलिष्वपि।
पूज्यते भगवान् रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्।। (कू. पु. पू. वि. 27/18-19)

व्यासजी आगे कलियुग के धर्मों का वर्णन करते हुए शिवपूजन की विशेष महिमा को स्वीकार करते हुए कहते हैं- "जिस प्रकार रुद्र को किया गया नमस्कार निश्चितरूप से सभी कामनाओं को पूर्ण करता है, अन्य देवों को किया गया नमस्कार वैसा फल नहीं देता। इस प्रकार के कलियुग में दोषों को दूर करने का एकमात्र उपाय है महादेव को नमस्कार, उनका ध्यान और शास्त्रानुसार दान-ऐसा वेदों का मत है।"

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकर्मफलो ध्रुवम्।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्।।
एवंविधे कलियुगे दोषाणामेकशोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः।। (कू. पु. पू. वि. 28/39-40)

ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वरुण तथा अन्य सभी देवता और महर्षिगण एक ही रुद्र(महेश्वर) के विभिन्न स्वरूप कहे गये हैं। मनुष्य इन स्वरूपों में से जिस भेद(स्वरूप) का अवलम्बन कर परमेश्वर की आराधना करते हैं, शिव(महेश्वर) उसी स्वरूप को ग्रहणकर फल प्रदान करते हैं। अतः इनमें से किसी भी भेद(स्वरूप) का अवलम्बन कर सनातन महादेव की आराधना करनेवाले को उस परम(शिव) पद की प्राप्ति होती है। निष्कर्ष यह है कि सर्वशक्तिसम्पन्न सनातन देव, गिरिश महादेव की सगुण अथवा निर्गुण किसी भी रूप में आराधना अवश्य करनी चाहिये।

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः।
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः।।
यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्।
तत् तद् रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः।।
तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्।
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्।।
किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातम्।
आराधयेद् वै गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्।। (कू. पु. उ. वि. 44/37-40)

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि महेश्वरतत्त्व ही सर्वस्व, परम ध्येय, है। इसलिये ब्रह्मा आदि प्रधान सभी देवों को छोड़कर आदि, मध्य तथा अन्त में रहनेवाले(शाश्वत तत्त्व) विरूपाक्ष (शंकर) की आराधना करनी चाहिये।

तस्मात् सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्।

आराधयेद् विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्।। (कू. पु. उ. वि. 44/43)

भगवान् शिव स्वयं एक अन्य स्थल पर कहते हैं कि संसार में रहनेवाले सभी जीवों को पशु कहा गया है, मैं देव उनका पति(स्वामी) हूँ, इसलिये विद्वानों द्वारा 'पशुपति' कहा जाता हूँ। मैं मायारूपी पाश के द्वारा अपनी लीला से इन पशुओं को बन्धन में डालता हूँ। वेदज्ञ लोग मुझे ही पशुओं को मुक्त करनेवाला मोचक कहते हैं। माया के पाश से आबद्ध जीवों को मुक्त करनेवाला मुझ भूतों के अधिपति अव्यय परमात्मा को छोड़कर अन्य कोई नहीं है।

आत्मानः पशवः प्रोक्ताः सर्वे संसारवर्तिनः।
तेषां पतिरहं देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः।।
मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहुः पशूनां वेदवादिनः।।
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।
मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्।। (कू. पु. उ. वि. 7/18-20)

जो महादेव से भिन्न किसी दूसरे देव को नहीं जानता और इन्हीं को अपनी आत्मा मानता है, वह परमपद को प्राप्त होता है।

नान्यद् देवान्महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्।। (कू. पु. उ. वि. 29/41)

(2) मोक्षसाधन

आत्मा का बन्धन करनेवाले अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-इन क्लेश नामवाले पाँच अचल(दीर्घकालतक स्थायी सा रहनेवाला) तत्त्वों को पाश कहा जाता है। माया को इन पाशों का कारण कहा जाता है। इन्हीं की प्रेरणा से व्यक्ति कर्म करता है जो धर्ममूलक या अधर्ममूलक होते हैं। इन धर्माधर्मों के फल भोगने के लिये शरीर धारण करना पड़ता है। अतः इन पाशों से मुक्ति का नाम ही मोक्ष है। इन पाशों से मुक्ति भगवान् के दर्शन(या प्राप्ति) से हो सकती है।

भगवान् शिव कहते हैं कि कुछ लोग ध्यानद्वारा, कुछ दूसरे लोग ज्ञानद्वारा, कुछ भक्तियोग के द्वारा और कुछ कर्मयोग के द्वारा मेरा दर्शन करते हैं। जो ज्ञानद्वारा नित्य मेरी भक्ति करता है, वह सभी प्रकार के भक्तों में मुझे प्रियतर है। अन्य भी जो मेरी आराधना करने के अभिलाषी तीन(प्रकार के) भक्त हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता।(कू. पु. उ. वि. 4/24-26)

(ज्ञानमार्गी)मोक्षार्थियों को अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापी एवं अव्यय(शिवरूप आत्मा) की उपासना, उसका श्रवण एवं मनन करना चाहिये। जिस समय मुमुक्षु अपने आत्मा में ही सभी भूतों को एवं सभी भूतों में अपने आत्मा को देखता है उस समय उसे ब्रह्म(शिव) की प्राप्ति होती है। जब वह पारमार्थिक रूप में केवल अद्वितीय आत्मा(शिव) का साक्षात्कार करता एवं संपूर्ण जगत् को मायामात्र

समझने लगता है, उस समय वह शान्त(मुक्त) हो जाता है।(कू. पु. उ. वि. 2/29-31)

कर्मों से उत्पन्न धर्म एवं अधर्म नामवाले पाशों से मुक्ति का उपाय कर्मयोग है। अर्थात् भगवान् शिव को अर्पित किये गये कर्म बन्धन नहीं करते। दूसरे शब्दों में भगवद् अर्पण बुद्धि से समस्त कर्मों को करनेवाला पाशों में नहीं बँधता, (धर्मयुक्त कार्य भी अगर सकाम है तो वह बंधन का कारण होता है) और वह मुक्त हो जाता है।(कू. पु. उ. वि. 7/28)

योग(ध्यान) दो प्रकार का होता है- अभावयोग एवं महायोग। जिसमें सभी आभासों से रहित शून्यमय स्वरूप का चिन्तन होता है एवं जिसके द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होता है उसे अभावयोग कहते हैं। जिसमें नित्यानंदस्वरूप निरञ्जन आत्मा एवं शिव में अभेद प्रतीति होती है उसे परमेश्वरस्वरूप महायोग कहा गया है(कू. पु. उ. वि. 11/5-7)। अष्टांग योग(जैसा पतंजलि के योगसूत्रों में है) के द्वारा व्यक्ति उपरोक्त योगों की प्राप्ति कर सकता है।

भक्ति की विशेषता को बतलाते हुए भगवान् शिव कहते हैं कि "मैं न तो विविध प्रकार के तप से, न दान से और न यज्ञों से ही जानने योग्य हूँ। बिना उत्तम भक्ति के मनुष्य मुझे जान नहीं सकता।"

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्।। (कू. पु. उ. वि. 4/2)

आगे वे भक्त की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि मेरे भक्त का विनाश नहीं होता। जो उस (भक्त)- की निन्दा करता है, वह मूढ़ मेरी ही निन्दा करता है और जो उसकी पूजा करता है वह(समझो कि) मेरी ही पूजा करता है। मेरी आराधना के लिये जो नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल तथा जल मुझे प्रदान करता है, वह मेरा प्रिय भक्त है, ऐसा समझना चाहिये। (कू. पु. उ. वि. 4/12-14)

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः।। (कू. पु. उ. वि. 4/14)

(3) लिंगार्चन का महत्त्व

भगवान् शिव कहते हैं कि मुझमें मन लगानेवाला, मुझे नमस्कार करनेवाला एवं मेरी आराधना करनेवाला मत्परायण व्यक्ति मुझे प्राप्त कर लेता है। इस संसार में जो मनुष्य मुझमें चित्त लगाकर मेरा पूजन करते हैं उनके योग-क्षेम को मैं वहन करता हूँ। पुत्र, स्त्री, गृह आदि में आसक्ति का परित्यागकर, शोकरहित तथा अपरिग्रही होकर विरक्त पुरुष को मृत्युपर्यन्त(शिव) लिंग में परमेश्वर की आराधना करनी चाहिये। जो सम्पूर्ण भोगों को त्यागकर सदा लिंग का पूजन करते रहते हैं उन्हें मैं एक जन्म में ही परम ऐश्वर्य प्रदान करता हूँ।(कू. पु. पू. वि. 11/93)

नियमपूर्वक भक्ति करनेवाले दूसरे लोग विधिपूर्वक अन्यत्र कहीं भी(शिवलिंग की) भावना करते हुए उस महेश्वर के लिंग की पूजा करते हैं। जल में, अग्नि में, आकाश में, सूर्य में, रत्नादि में अथवा अन्यत्र कहीं भी ईश्वरीय लिंग की भावना करके ईश की उपासना करनी चाहिये। यह सम्पूर्ण

जगत् लिंगमय है एवं यह लिंग में ही प्रतिष्ठित है। अतएव कहीं पर भी लिंगरूप में शाश्वत ईश की आराधना करनी चाहिये। .....क्रियाशीलों का(लिंग) अग्नि में, मनीषियों का जल, आकाश और सूर्य में, अज्ञानियों का काष्ठ आदि में और योगियों का लिंग हृदय में स्थित रहता है।(कू. पु. उ. वि. 11/95-98)

एक बार मार्कण्डेयजी भगवान् श्रीकृष्ण को मन्दिर में प्रतिष्ठित लिंग, जो भस्म से विभूषित था, की पूजा करते देख उनसे पूछते हैं कि "देव! कर्मों द्वारा आपकी ही पूजा की जाती है और योगियों के ध्येय भी आप ही हैं, फिर आप शुभ कर्मों के द्वारा किस देवता की आराधना कर रहे हैं, यह मुझे बतलायें।"

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च।। (कू. पु. पू. वि. 25/52)

उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- "आपने जो कुछ भी कहा, सब सत्य कहा है, इसमें संशय नहीं है तथापि मैं सनातनदेव ईशान(शंकर) की पूजा करता हूँ। विप्र! मुझे न तो कुछ करना है और न मुझे कुछ अप्राप्त है, फिर भी यह जानते हुए भी मैं परम शिव ईश की पूजा करता हूँ। माया से मोहित लोग उन देव(शंकर) का साक्षात्कार नहीं कर पाते, परन्तु मैं अपने मूल[1] का परिचय देते हुए उनकी पूजा करता हूँ। इस संसार में लिंगार्चन से अधिक कोई पुण्य और भय का नाश करनेवाला(कर्म) नहीं है। अतः इन लोकों(प्राणीमात्र) के कल्याण के लिये लिंग में शिव की पूजा करनी चाहिये।"(कू. पु. पू. वि. 25/55-58)

न च लिङ्गार्चनात् पुण्यं लोकेऽस्मिन् भीतिनाशनम्।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्।। (कू. पु. पू. वि. 25/58)

संसार से भयभीत लोगों को इन देव महादेव का सदा ध्यान, पूजन और वन्दन करना चाहिये तथा लिंग में महेश्वर को सदा प्रतिष्ठित समझना चाहिये।

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः।
ध्येयः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः।। (कू. पु. पू. वि. 25/61)

श्रीकृष्ण के इस प्रकार उत्तर देने पर मार्कण्डेयजी पुनः पूछते हैं कि आप यह बतलायें कि लिंग क्या है और लिंग में किसकी पूजा होती है? उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं कि "ज्योतिःस्वरूप, अक्षर, अव्यक्त आनन्द को लिंग[2] कहा गया है और वेद महेश्वर देव को अव्यय तथा लिंग धारण करनेवाला

1. मेरे भी मूल(सर्वाधिष्ठान) महादेव शंकर ही हैं- यह सब बताने के लिये मैं लिंगस्वरूप भगवान् शंकर की पूजा करता हूँ।

2. लिंग का अर्थ है कारण। यहाँ प्रसंगानुसार लिंग का अर्थ मूल कारण है। मूल कारण परमेश्वर शिव ही हैं। वे ज्योतिःस्वरूप, अक्षर एवं आनंदस्वरूप हैं, इसलिये यहाँ लिंग को ज्योतिःस्वरूप तथा आनंदरूप कहा गया है।

कहते हैं। प्राचीन काल में जब सर्वत्र जल-ही-जल एकार्णव हो गया और स्थावर- जंगम सब नष्ट हो गया, तब ब्रह्मा तथा मुझे(विष्णु को) प्रबोधित करने के लिये उसी एकार्णव में शिव का(ज्योतिर्लिंगमय रूप में) प्रादुर्भाव हुआ। उसी समय से लोकों के कल्याण की कामना से ब्रह्मा तथा मैं दोनों ही सदा महादेव(के लिंग) की पूजा करते हैं।" तभी से लिंगपूजा का प्रचलन प्रारंभ हुआ।

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्।
वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्।।
पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः।।
तस्मात् कालात् समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि।
पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया।। (कू. पु. पू. वि. 25/63-65)

(4) भगवद्प्राप्ति के अन्य साधन

ओंकार को भगवान् शिव का वाचक तथा मुक्ति का बीज माना गया है(कू. पु. उ. वि. 5/29), इसीलिये अन्हें ओंकारमूर्ति भी कहते हैं(कू. पु. उ. वि. 8/9)। जिस व्यक्ति को ज्ञान नहीं हुआ है, उस पुरुष को वैराग्य एवं प्रीतिपूर्वक जीवनपर्यन्त एकाग्र मन से ब्रह्म के शरीरस्वरूप प्रणव(ॐ कार) का जप करना चाहिये अथवा संयत चित्तवाले एकाकी द्विजों को मरणपर्यन्त शतरुद्रिय का जप करना चाहिये। ऐसा करने से वे परम पद को प्राप्त करते हैं(कू. पु. उ. वि. 11/99-100), क्योंकि भगवान् शिव के गोपनीय नाम शतरुद्रिय में हैं। उसका मन लगाकर, ब्रह्मचर्य धारणकर, संयमित आहार ग्रहणकर तथा भस्म लगाकर जप करने से परम पद प्राप्त किया जा सकता है।(कू. पु. पू. वि. 19/68-69)

जो पुरुष एकाग्र मन से मरणपर्यन्त वाराणसी में निवास करता है, उसे भी ईश्वर के अनुग्रह से परम पद प्राप्त होता है। वाराणसी में प्राण निकलते समय महेश्वर सभी प्राणियों को श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिससे वे बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। नीच एवं पापयोनिवाले प्राणी भी वाराणसी में निवास करने के कारण ईश्वर के अनुग्रह से तर जाते हैं, किन्तु पापाक्रान्त चित्तवाले मनुष्यों को वहाँ निवास करने में विघ्न होते हैं। अतएव मुक्ति के लिये निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये।(कू. पु. उ. वि. 11/101-2, 104-105)

मोक्ष की अभिलाषावाले व्यक्ति को भस्म से धूसरित शरीरवाला होकर संयत-मन तथा शान्त होकर, ब्रह्मचर्यव्रत-परायण होते हुए वस्त्रादि की आसक्ति से रहित होकर पाशुपत-व्रत का पालन करना चाहिये(कू. पु. उ. वि. 37/140-141)। ब्रह्मचर्य, अहिंसा, क्षमा, शौच, तप, दम, संतोष, सत्य तथा आस्तिकता- ये सभी पाशुपत-व्रत के विशेष अंग हैं। इनमें से एक अंग के भी न होने से यह

व्रत लुप्त हो जाता है। इसलिये इन आत्मगुणों से युक्त साधक ही मेरा पाशुपत-व्रत धारण कर सकता है।(कू. पु. उ. वि. 11/69-70)

भगवान् शिव की सगुणोपासना में आरुढ़ होने की इच्छा करनेवाले को पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, तीन नेत्रोंवाले, जटाधारी, चर्माम्बरधारी, पद्मासन में स्थित तथा स्वर्णिम आभावाले शंकररूप का ध्यान करना चाहिये(कू. पु. उ. वि. 44/41-42)। तदनन्तर रुद्रगायत्री[1], प्रणव, ईशान-मन्त्र[2], रुद्र तथा त्र्यम्बक मन्त्र[3] से एकाग्र-मन होकर पुष्प, पत्र, जल, तथा चन्दन आदि के द्वारा महेश्वर की आराधना करनी चाहिए और मन्त्र का उच्चारण कर मन्त्र के साथ **'नमः शिवाय'** को जोड़ना चाहिये। तदनन्तर ऋत एवं सत्यस्वरूप ईश्वर महादेव को नमस्कार करना चाहिये और **'यो ब्रह्माणं'**[4] इस मन्त्र के द्वारा अपने को ईश्वर के लिये समर्पित करे। द्विज को पाँच ब्रह्म(शिव के पाँच नामों)[5] का जप करते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये और आकाश के मध्य स्थित ईशानदेव शिव का ध्यान करना चाहिये(कू. पु. उ. वि. 18/97-100)।

भगवान् शिव कहते हैं कि जो नारायण हैं, वह मैं ईश्वर ही हूँ। नारायण नामवाली तथा शान्त अक्षर-संज्ञक मेरी यह मूर्ति सभी प्राणियों के हृदय में स्थित है। श्रुति के अनुसार(जगत् की) स्थापना करनेवाली(रुद्र की) मोहनी शक्ति को ही नारायण कहते हैं(कू. पु. उ. वि. 44/26)। लोक में जो भेद-दृष्टिवाले लोग इसके विपरीत समझते हैं, वे मेरा दर्शन नहीं कर पाते, और बार-बार संसार में जन्म लेते हैं। जो इन अव्यक्त विष्णु अथवा मुझ देव महेश्वर को एकी भाव से देखते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिये आदि और अन्त से रहित आत्मरूप अव्यय विष्णु मुझे ही समझो और फिर वैसे ही पूजा भी करो। जो लोग विष्णु और मुझको अलग-अलग देवता के रूप में देखते हैं वे घोर नरक में जाते हैं, मैं उनमें स्थित नहीं रहता हूँ। मूर्ख हो, पण्डित हो, ब्राह्मण हो अथवा चाण्डाल हो, मेरे आश्रित रहनेवाले प्रत्येक को मैं मुक्त कर देता हूँ, किन्तु जो नारायण की निन्दा करनेवाले हैं उन्हें मैं मुक्त नहीं करता। इसलिये मेरे भक्त मुझमें प्रीति उत्पन्न करने के लिये महायोगी भगवान् विष्णु की पूजा एवं वन्दना किया करें।(कू. पु. उ. वि. 11/111-118)

---

1. **रुद्र गायत्री-ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।**

2. **ईशान मन्त्र-ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदाशिवोम्।**

3. **त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम् पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः।**(यजु. 3/60)

4. **यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तम् ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।**(श्वेताश्व. उ. 6/18)

5. **ईशानः[1] सर्वविद्यानाम् ईश्वरः[2] सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिः[3] ब्रह्मणोऽधिपतिः[4] ब्रह्मा[5] शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्।।**

मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्।
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्।।
तस्मादेष महायोगी मद्भक्तैः पुरुषोत्तमः।
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय हि।। (कू. पु. उ. वि. 11/117-118)

एक अन्य स्थल पर भगवान् शिव ने विष्णु भगवान् से कहा है कि "हे विश्वात्मन्! बिना आपका आश्रय ग्रहण किये योगी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते।"

त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन् न योगी मामुपैष्यति। (कू. पु. पू. वि. 9/86)

रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र तथा महादेव-ये आठ रुद्र के नाम हैं। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण तथा चन्द्र-ये(रुद्र की) आठ मूर्तियाँ हैं। जो इन आठ स्थानों(मूर्तिरूपों) में रुद्र का ध्यान करते हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं, उन्हें अष्टमूर्तिरूप देव(भगवान् शिव अपना) परम पद देते हैं।(कू. पु. पू. वि. 10/26-27)

आराधना के लिये सबसे उत्तम तो परम देव शिव हैं जिनसे त्रिदेवों की उत्पत्ति हुई है। परन्तु अगर ऐसा किसी कारणवश संभव न हो तो हर अथवा विष्णु अथवा ब्रह्मा की आराधना करनी चाहिये। और अगर व्यक्ति इसमें भी असमर्थ है तो भक्तियुक्त होकर(कार्यब्रह्म की शक्ति) वायु, अग्नि तथा इन्द्रादि देवताओं की उसे पूजा करनी चाहिये।(कू. पु. उ. वि. 44/43, 46)

सांख्य-योग की चर्चा करते हुए बताया गया है कि केवल योग के द्वारा मुक्ति नहीं मिलती अपितु योगसहित सांख्य पुरुषों को मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। दूसरे शब्दों में अनासक्त भाव से कर्मनिष्ठा(कर्मयोग) और ज्ञाननिष्ठा(सांख्य) ही मोक्षकारक है। भस्म धारण कर, ज्ञाननिष्ठा परायण हो शान्त और नित्य शिवभक्ति में जो तत्पर हैं, वे लोग भवसागर से पार हो जाते हैं।(उ. वि. 37/128-139)

शिव के भक्तों के लिये शिवलिंग धारण करना श्रेष्ठ है। शैवों को यह भी चाहिये कि वे श्वेत भस्म से ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करें। ऊपर-नीचे भावपूर्वक त्रिपुण्ड्र के धारण करने से अनादि(होते हुए भी), जो प्राणियों का आदि है, कालात्मा है, उसका धारण करना हो जाता है।(कू. पु. पू. वि. 2/100-103)

योऽसावनादिर्भूतादिः कालात्मासौ धृतो भवेत्।
उपर्यधो भावयोगात् त्रिपुण्ड्रस्य तु धारणात्।। (कू. पु. पू. वि. 2/103)

(5) शैवतीर्थों के माहात्म्य

तीर्थसेवन भी उपासना का एक महत्त्वपूर्ण अंग बताया गया है। परन्तु तीर्थ-सेवन संबंधी शास्त्रीय नियमों का पालन करने पर ही उसका पूरा फल मिलता है। जो अपने धर्मों[1](वर्णाश्रम आदि) का परित्यागकर

1. उदाहरण के लिये क्षमा, दम, दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव, असूया, तीर्थानुसरण, सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवद्विजपूजन, अहिंसा, प्रिय भाषण, अपैशुन्य और अकलह चारों वर्णों के सामान्य धर्म हैं।

तीर्थों का सेवन करता है, उसके लिये तीर्थ न इस लोक में फलदायी होते हैं न परलोक में।

यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च।। (कू. पु. उ. वि. 42/20)

प्रायश्चित्ती, पत्नी से रहित विधुर पुरुष तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकार के जो अन्य लोग हैं, उन्हें(पश्चात्तापपूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थों का सेवन करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर यथोक्त गति(उत्तम गति) प्राप्त करता है। अथवा तीनों ऋणों से मुक्त होने के बाद पुत्रों के लिये जीविका-संबंधी वृत्ति की व्यवस्थाकर और अपनी पत्नी को उन्हें सौंपकर तीर्थ का सेवन करना चाहिये।(कू. पु. उ. वि. 42/21-23)

इस पुराण में नाना प्रकार के शैवतीर्थों का उसकी महिमा के साथ वर्णन हुआ है। रामेश्वर लिंग, वाराणसी के विश्वेश्वर लिंग, ओंकारेश्वर, कृत्तिवासेश्वर, कपर्दीश्वर, मध्यमेश्वर आदि लिंग, ब्रह्मतीर्थ, प्रभास, विजय, गोकर्ण, सप्त सरस्वती, रुद्र कोटि, कालांजर, महालय, केदार, कनखल, श्रीपर्वत, दारुवन, अमर कंटक, ऋषि, महेश्वर, इक्षुनदी संगम, काम, सिद्धेश्वर, शुक्ल, भृगु, गौतमेश्वर, मानस, पिंगलेश्वर, जप्येश्वर, पंचनद, कायावरोहण, महाकाल, गंगाद्वार, तथा भीमेश्वर इत्यादि तीर्थों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही नर्मदा नदी के माहात्म्य का भी वर्णन किया गया है। इन तीर्थों में स्नान, पूजा तथा उनके सेवन से मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं फलस्वरूप वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

एक बार देवी ने भगवान् शिव से पूछा कि पुरुष किस प्रकार शीघ्र ही आपका दर्शन कर सकता है? लोक में सांख्य-योग, ध्यान, वैदिक कर्मयोग और अन्य भी अनेक अधिक परिश्रमसाध्य उपाय बताये गये हैं। इस बारे में जो गूढ़ ज्ञान हो उसे आप हम सभी भक्तों के कल्याण के लिये बतलायें, जिससे देहधारियों को भगवान् का दर्शन हो सके।

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि वाराणसीपुरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। यह सभी प्राणियों को संसारसागर से पार उतारनेवाली है। यह मेरा अविमुक्त(काशीक्षेत्र) सभी स्थानों में श्रेष्ठ और सभी ज्ञानों में उत्तम ज्ञानरूप है।

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च तत्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम।। (कू. पु. पू. वि. 29/24)

मेरा गृहस्वरूप यह क्षेत्र भूलोक से सम्बद्ध नहीं है, अपितु अन्तरिक्ष में अवस्थित है, अयोगियों को इसका दर्शन नहीं होता। जो योगी हैं वे ध्यान में इसका दर्शन करते हैं। यहाँ किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तप, कर्म, ध्यान, अध्ययन और ज्ञानार्जन-सब कुछ अक्षय हो जाता है। इस क्षेत्र में प्रविष्ट होनेवाले का हजारों जन्मान्तरों में किया हुआ पूर्वसंचित पाप नष्ट हो जाता है। इस क्षेत्र में कालवश मृत्यु को प्राप्त सभी प्रकार के प्राणी शिवस्वरूप को प्राप्त कर मेरे धाम को जाते हैं। यहाँ मरा हुआ प्राणी नरक नहीं जाता, कृपा से वे सभी परमगति प्राप्त करते हैं। तपस्या द्वारा पवित्र प्राणी के लिये भी जो

गति अन्यत्र मरने पर दुर्लभ है वह यहाँ मेरे अनुग्रह से प्राप्त हो जाती है। मेरी माया से विमोहित अज्ञानी लोग इस तत्त्व को नहीं समझते।

नैष्ठिकी दीक्षा ग्रहण कर जो अविमुक्तक्षेत्र में निवास करते हैं, उन्हें मैं श्रेष्ठ ज्ञान और अन्त में परम पद प्रदान करता हूँ। प्रयाग, नैमिषारण्य, श्रीशैल, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, आम्रातकेश्वर, शालिग्राम, कुब्जाम्र, कोकामुख, प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण तथा भद्रकर्ण–ये सभी पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हैं, किंतु जिस प्रकार वाराणसी में मरे हुए व्यक्तियों को परम मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।(कू. पु. पू. वि. 29/44–47)

दूसरे स्थान में योग, ज्ञान, संन्यास अथवा अन्य उपायों से हजारों जन्मों में वह परमपद मोक्ष प्राप्त होता है, किन्तु शंकर के जो भक्त वाराणसी में निवास करते हैं, वे एक जन्म में ही परम मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ एक ही जन्म में योग, ज्ञान अथवा मुक्ति मिल जाती है उस अविमुक्तक्षेत्र में पहुँचकर फिर किसी दूसरे तपोवन में नहीं जाना चाहिये। यह अविमुक्तक्षेत्र ऐसा है, जहाँ साक्षात् महादेव देहान्त होने के समय तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं।

अन्यत्र योगज्ञानाभ्यां संन्यासादथवान्यतः।
प्राप्यते तत् परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना।।
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै।
ते विन्दन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना।।
यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्।।
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः।
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तकम्।। (कू. पु. पू. वि. 29/53–55, 59)

वरुणा और असी(नदियों) के मध्य वाराणसीपुरी स्थित है। यहाँ महादेव से ज्ञान प्राप्तकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। किन्तु पाप से आक्रान्त चित्तवालों को विघ्न होते हैं। इसलिये शरीर, मन और वाणी से वहाँ पाप नहीं करना चाहिये।

किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसः।
ततो नैव चरेत् पापं कामेन मनसा गिरा।। (कू. पु. पू. वि. 29/67)

नर्मदा के माहात्म्य को मार्कण्डेयजी बताते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि "रुद्र की देह से निकली हुई नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ है। वह सभी चर–अचर प्राणियों को पार उतारनेवाली है। गंगा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र कही गयी है, किन्तु ग्राम अथवा अरण्य में सर्वत्र ही नर्मदा को पवित्र कहा गया है। सरस्वती का जल तीन दिन, यमुना का जल सात दिन तथा गंगाजल तत्काल सेवन से, किन्तु नर्मदा का जल दर्शनमात्र से ही पवित्र कर देता है।"

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।।
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा।।
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्।।[1] (कू. पु. उ. वि. 38/5, 7-8)

त्रिदेवों की एकता एवं शिवनिन्दा का फल

यों तो सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् शिव की ही शक्ति के विविध रूप हैं, उनकी विभूतियाँ हैं तथापि उन रूपों में त्रिदेव उत्कृष्टतमरूप या अभिव्यक्तियाँ हैं। ये तीनों प्रमुख देव ही सृष्टिकार्य को संचालित करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र के रूप में निर्गुण-निराकार शिव ही क्रमशः सृष्टि, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं। ये तीनों देव तत्त्वतः एक हैं तथा अनन्त शक्तियों से युक्त हैं। इस पुराण में अनेक स्थल पर उनकी एकता का कथन किया गया है।

कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु ऋषियों से कहते हैं कि "परात्पर परमात्मा की रज, सत्त्व एवं तमोगुण के योग से क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नामक तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं। ये तीनों विग्रह परस्पर एक दूसरे में अनुरक्त तथा एक दूसरे के उपजीवी(आश्रित) हैं। ये तीनों परमेश्वर हैं और लीलावश एक दूसरे को प्रणाम करते रहते हैं। हे ब्राह्मणो! रुद्र में ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा अक्षर(वैष्णवी) नामक तीन प्रकार की भावनाएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं। मुझमें प्रथम अक्षरभावना निरन्तर प्रवाहित होती रहती है। भगवान् ब्रह्माजी की द्वितीय अक्षरभावना कही गयी है।"

तिस्रस्तु मूर्त्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजःसत्त्वतमोयोगात् परस्य परमात्मनः।।
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः।
अन्योन्यं प्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः।।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना।
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्तन्ते सततं द्विजाः।।
प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या चाक्षरभावना।
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता देवस्याक्षरभावना।। (कू. पु. पू. वि. 2/89-92)

विष्णुजी आगे कहते हैं कि "पारमार्थिक दृष्टि से मुझमें और महादेव में कोई भिन्नता नहीं है। वही अन्तर्यामी ईश्वर अपनी इच्छा से अपने को विभाजित कर(मेरे तथा महादेव के रूप में) स्थित है। देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों के साथ ही त्रैलोक्य की सृष्टि करने के लिये(इसी परम) पुरुष ने

1. ये तीनों श्लोक लगभग इसी रूप में मत्स्य पुराण(186/8, 10-11) में भी पाये जाते हैं।

अपने परात्पर अव्यक्त स्वरूप द्वारा ब्रह्मत्व को स्वीकार किया अर्थात् वे ही अव्यक्त परमात्मा सृष्टि करने के लिये ब्रह्मा के रूप में व्यक्त हुए। अतः ब्रह्मा, महादेव एवं विश्वेश्वर भगवान् विष्णु(ये तीनों ही)पृथक्-पृथक् कार्य की दृष्टि से एक ही प्रभु की तीन मूर्तियाँ कही गयी हैं।"

अहं चैव महादेवो न भिन्नौ परमार्थतः।
विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः।।
त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्।
पुरुषः परतोऽव्यक्ताद् ब्रह्मत्वं समुपागमत्।।
तस्माद् ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः।
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनूः कार्यवशात् प्रभोः।। (कू. पु. पू. वि. 2/93-95)

किसी प्रसंग में भगवान् शिव ब्रह्माजी से कहते हैं कि मैं ही निष्कल परमेश्वर सृष्टि, रक्षा एवं प्रलय-इन तीन गुणों से भावित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव-इन नामों से तीन रूपों में विभक्त हूँ। एक होते हुए भी वे शंकर अपनी इच्छा से अपने को(तीन रूपों में) विभक्तकर स्थित रहते हैं। वे देव इन त्रिमूर्तियों से उत्कृष्ट एवं श्रेष्ठ शरीरवाले हैं।

त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहरारव्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः।
विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः।।
ऐभ्यः परतरो देवस्त्रिमूर्तिः परमा तनुः। (कू. पु. पू, वि, 10/75, 78, 80)

ब्रह्माजी दक्ष से कहते हैं कि शंकर की निन्दा करना छोड़ दो क्योंकि उनकी निन्दा करनेवाले की सारी क्रियाएँ दोषयुक्त ही होती हैं। जो आपके ये अव्यय तथा महायोगी विष्णु रक्षक हैं, वे भी देवताओं के देव भगवान् महादेव ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं। जो अज्ञान से भगवान् विष्णु को शंकर से पृथक मानता है, वह मनुष्य नरक में जाता है। वेदमार्ग का अनुसरण करनेवाले लोग रुद्रदेव तथा नारायण को एकीभाव से देखते हैं। आगे कहा गया है कि जो विष्णु हैं वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं-इस प्रकार समझकर जो देव का पूजन करता है, वह परम-गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँपर शिव एवं विष्णु की एकता बतलायी गयी है।(कू. पु. पू. वि. 14/85-89)

यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्।। (कू. पु. पू. वि. 14/89)

उपरोक्त संदर्भों के अलावा त्रिदेवों की एकता संबंधी अन्य कई संदर्भ इस पुराण में पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये-उ. वि. 44/34; 44/37 इत्यादि। इसी प्रकार शिव एवं विष्णु की एकता

संबंधी संदर्भ इस प्रकार हैं – पू. वि. 9/77, 79; 15/152, 161–162; 24/81; उ. वि. 11/111, 113 – 115 इत्यादि।

भगवान् श्रीकृष्ण परलोक पधारने से पहले भृगु आदि महर्षियों से कहते हैं कि "नारायण के भक्तजन पर से परतर(अच्छे से अच्छा) स्थान को प्राप्त करते हैं, किन्तु जो महेश्वर से द्वेष रखते हैं, वे वहाँ नहीं जाते। जो पिनाक धारण करनेवाले शिव की निन्दा करते हैं, उनका ध्यान, होम, किया गया तप, ज्ञान तथा यज्ञादि सभी विधान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो ईशान(शंकर) देव की निन्दाकर नित्य अनन्य भाव से मेरा(कृष्ण का) आश्रय ग्रहण करता है, वह दस हजार वर्षोंतक नरक में रहता है। इसलिये द्विजों! मन, वाणी तथा कर्म से पशुपति तथा उनके भक्तों की निन्दा का प्रयत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये।"

परात् परतरं यान्ति नारायणपरायणाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम्।।
ध्यानं होमं तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः।
तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति पिनाकिनम्।।
यो माम् समाश्रयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्द्य देवमीशानं स याति नरकायुतम्।।
तस्मात् सा परिहर्तव्या निन्दा पशुपतौ द्विजाः।
कर्मणा मनसा वाचा तद्भक्तेष्वपि यत्नतः।। (कू. पु. पू. वि. 26/13 – 16)

उपसंहार

अन्य शैव पुराणों की भाँति कूर्म पुराण के भी प्रमुख देवता भगवान् शिव हैं। भगवान् शिव को परम तत्त्व बताते हुए उन्हें एक, निर्गुण, निरञ्जन, सृष्टि का पालन तथा संहार कर्त्ता, अनन्तरूप धारण करनेवाला, ॐकारस्वरूप, सर्वव्यापी, अजर, अमर, स्वतंत्र, आत्मस्वरूप, त्रिनेत्रधारी, जटा एवं त्रिशूलधारी, परब्रह्मस्वरूप, सकल – निष्कलरूप, कालरूप, तारक, अक्षर, निष्प्रपंच, प्रधान, पुरुष, प्रकृति, मलरहित तथा पशुपति आदि कहा गया है। उनके बायें अंग से विष्णु, दाहिने से ब्रह्मा तथा हृदय से रुद्र प्रकट हुए हैं। भगवान् शिव में ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, स्रष्टृत्व, आत्मज्ञान तथा अधिष्ठातृत्व – ये दस अव्यय गुण सदा प्रतिष्ठित रहते हैं। इस प्रकार भगवान् शिव के निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपों की झलक हमें इस पुराण में मिलती है।

शिव शक्तिमान कहे जाते हैं। शिव अपनी शक्ति से अलग नहीं हैं। समस्त जगत् की शक्तियाँ शक्ति की तथा शक्तिमान शिव के ही रूपान्तर हैं। शिव की शक्ति को माया भी कहते हैं। महेश्वर को छोड़कर सब कुछ अनित्य है। काल के संसर्ग से मायावी शिव संसार की सृष्टि करते हैं और फिर अन्त में संहार भी करते हैं। काल भी भगवान् शिव का ही रूप है।

शिव की उपासना से भगवान् राम, विष्णु, कृष्ण तथा नारायण, गरुड़, जनक, व्यास, भृगु, नन्दी, पराशर, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, बाणासुर आदि ने अपने-अपने मनोरथ हासिल किये। जिस प्रकार भगवान् शिव को श्रेष्ठ माना गया है उसी प्रकार उनकी भक्ति को। उनकी भक्ति से व्यक्ति भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिव की भक्ति सुगम होने के साथ-साथ जीवन के चरम लक्ष्य को पहुँचानेवाली है। भगवान् शिव को कोई ज्ञान से, कोई योग-ध्यान से,कोई कर्म से और कोई भक्ति से प्राप्त करता है। सभी प्रकार के उपासकों में ज्ञानी श्रेष्ठ है पर ज्ञान बहुत ही दुर्लभ है। अतः भगवान् शिव भक्ति द्वारा ही आसानी से प्राप्य हैं। योगों में अष्टांग-योग को विस्तार से इस पुराण में समझाया गया है। सत्ययुग के प्रधान देवता ब्रह्मा, त्रेता के सूर्य, द्वापर के विष्णु तथा कलि के भगवान् शिव हैं। अतः कलि के दोषों को दूर करने का उपाय शिवाराधना ही है। चूँकि ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता शिव के ही रूप हैं इस कारण से अन्य रूपों के आलंबन द्वारा जो भक्ति की जाती है महादेव उसी रूप को धारणकर आराधना करनेवाले को फल प्रदान करते हैं। अर्थात् भिन्न-भिन्न देवों के उपासकों को जो फल प्राप्त होता है वह भगवान् शिव द्वारा ही दिया जाता है।

भगवान् शिव की शक्तियाँ ही विभिन्न देवों के रूप में व्यक्त होती हैं। इन सभी अभिव्यक्त शक्तियों में ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन प्रमुख हैं जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, तथा शान्तरूप हैं और भोग तथा मोक्षरूप फल को देनेवाली हैं। सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य तथा सारूप्य नामक मुक्ति ये तीनों ही देव दे सकते हैं पर कैवल्य नामक मुक्ति भगवान् शिव के अनुग्रह से प्राप्त होती है। भगवान् शिव की कलियुग में ही नहीं अपितु चारों युगों में उपासना होती है पर अन्य देवों की युग विशेष में ही प्रधानता रहती है।

सभी जीव पशु हैं क्योंकि वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि बन्धनों या पाशों से बंधे हैं। इन पंच-क्लेशों की जड़ अज्ञान है। भगवान् शिव पशुपति हैं क्योंकि वे ही व्यक्ति को पाशों से बांधने और मुक्त करनेवाले हैं।

भगवान् शिव की भक्ति में सगुणोपासना, विशेषतः लिंगपूजा, को इस पुराण में महत्त्व दिया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से मार्कण्डेयजी को लिंगपूजा के माहात्म्य को समझाया है।

अन्त में मुक्ति प्राप्ति के लिये तीर्थसेवन को भी एक रास्ता बताया गया है जो सबसे सरल है। अनेक तीर्थों के वर्णन हमें इस पुराण में प्राप्त होते हैं जिनमें से काशी को सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। काशीसेवन या काशी में मरने से व्यक्ति एक ही जन्म में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। परन्तु तीर्थ सेवन के लिये एक शर्त भी बतायी गयी है जिसके अभाव में तीर्थ के फल प्राप्त नहीं होते। वह शर्त यह है कि तीर्थ में मन, वाणी तथा कर्म से पाप न किया जाय तथा तीर्थ सेवन करनेवाला अपने धर्मों का पालन करते हुए ही तीर्थ सेवन करे। सामान्य धर्म जो सभी के लिये अनिवार्य है वे ये हैं-दम, क्षमा, दया, दान, अलोभ, त्याग, आर्जव, असूया, सत्य, सन्तोष, आस्तिक्य, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह,

अहिंसा, अपैशुन्य, अकलह आदि।

इस पुराण में भगवान् शिव को सर्वोच्च परमब्रह्म स्वीकार करते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की तात्त्विक एकता को स्वीकार किया गया है। ये तीनों देव एक ही ब्रह्म के कार्यों के भेद से प्रकट तीन मूर्तियाँ हैं। अथवा ये सब एक ही ब्रह्म की विभूतियाँ हैं। तीनों देवों की एकता के साथ-साथ विष्णु एवं रुद्र तथा रुद्र एवं श्रीकृष्ण की एकता के भी कई प्रसंग इस पुराण में प्राप्त होते हैं। भगवान् शिव कहते हैं कि विष्णु एवं शिव में भेद करनेवाला नरकगामी होता है। पुनः वे यह भी कहते हैं कि मेरी प्रसन्नता के लिये विष्णु की पूजा करनी चाहिये। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण भी यह कहते हैं कि अगर कोई मेरा भक्त होकर शिव की निन्दा करता है तो वह हजारों वर्ष तक नरक में पड़ा रहता है।

s s s s s s s s

अन्नदान का माहात्म्य

न पृच्छेद्गोत्रचरणं न च स्वाध्यायमेव च।
भिक्षुको ब्राह्मणोह्यत्रदद्यादन्नंप्रयाति च।।
अन्नदस्यशुभा वृक्षाः सर्वकामफलान्विताः।

(पद्म महापु. उत्तरखण्ड 26/14-15)

अन्नदान करते समय याचक से यह न पूछे कि वह किस गोत्र और किस शाखा का है, तथा उसने कितना अध्ययन किया है? अन्न का अभिलाषी कोई भी (ब्राह्मण अथवा शूद्र) क्यों न हो, उसे दिया हुआ अन्न-दान महान् फल देनेवाला होता है।

अन्नतोयसमंदानं संसारे नास्ति जैमिने।।
सर्वदानफलान्येवअन्नतोयप्रदानतः।
न च पात्रपरीक्षा च न कालनियमः क्वचित्।।
अन्नतोयप्रदानेषु निरुक्तस्तत्त्वदर्शिभिः।
अन्नतोयप्रदानानि कर्तव्यानि सदैव हि।। (पद्म महापु. क्रियाखण्ड 21/131-133)

व्यासजी जैमिनी से कहते हैं कि अन्न-जल के दान के समान इस संसार में अन्य कोई दान नहीं है। अन्न-जल के दान से सभी प्रकार के दानों का फल प्राप्त हो जाता है। इसके लिये न तो पात्र के परीक्षा की आवश्यकता है और न ही काल का कोई नियम है (अर्थात् सभी प्रकार के व्यक्ति, सदैव- चाहे सुबह हो, शाम हो, दिन हो या रात हो-इस दान के पात्र हैं।)। तत्त्वदर्शियों ने यह कहा है कि अन्न-जल का दान व्यक्ति का नित्य कर्त्तव्य है।